s.com, for detailed information on ayurveda books, visit our website www.jaypeebrothers.com, for detailed information on ayurveda books

रचना शारीर

(आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान)

आयुर्वेदाचार्य (बी.ए.एम.एस.) नवीन पाठ्यक्रमानुसार



लेखक

आचार्य वैद्य ताराचन्द शर्मा
अमरीश चानना
वैद्य मनोज शर्मा
वैद्य अभिजित शर्मा

2 तीय संस्करण

भूमिका लेखक

वैद्य शिवकुमार मिश्र

JAYPEE

विषय सूची

1.	शरीरोपक्रमणीय शारीर	1
2.	परिभाषा शारीर	68
3.	गर्भावक्रान्ति शारीर	75
4.	प्रमाण शारीर (अञ्जली एवं अंगुली प्रमाण)	150
5.	अस्थि शारीर	167
6.	सन्धि शारीर	195
7.	सिरा, धमनी, लसीका, एवं स्रोतों शारीर	211
8.	पेशी शारीर	286
9.	कोष्ठ एवं आशय शारीर	303
10.	कला शारीर	318
11.	उत्तमांगीय (नाड़ी एवं तन्त्र) शारीर	334
12.	मर्म-विज्ञान	359
13.	इन्द्रिय शारीर	400
14.	रक्तवह, पाचन, मूत्रवह एवं श्वसन संस्थान के अवयव	405
15.	प्रजनन संस्थान	435
16.	ग्रन्थि शारीर (अन्तःस्रावी ग्रन्थियां)	443
17.	ज्ञानेन्द्रिय रचना	449
18.	त्वक् शारीर	462
19.	रेडियोलोजिकल शारीर	472
20.	केश, दन्त एवं नख शारीर	477
	मौखिक परीक्षा हेतु प्रमुख स्मरण करने के बिन्दु	483
	शब्दानुक्रमणिका	493

अध्याय
3

गर्भावक्रान्ति शारीर

गर्भ शारीर

किसी भी विज्ञान के अध्ययन से पूर्व उसके मूलभूत सिद्धान्तों का ज्ञान करना आवश्यक हो जाता है। आयुर्वेद में आयु का विज्ञान है। अतः आयु के प्रारम्भिक सिद्धान्तों का ज्ञान होना आवश्यक है। शारीरिक स्वस्थता एवं रुग्णता दोनों ही शरीर के प्रारम्भिक उपादान तत्त्वों पर आधारित है। उनकी क्षमता एवं प्रकृति (स्वभाव) के अनुरूप ही प्रत्येक कार्य करने में शरीर सक्षम होता है। भारतीय चिकित्सा विज्ञान में घटक द्रव्यों का महत्व प्रत्येक क्षेत्र में प्रदर्शित किया गया है। अतः शरीर ज्ञान से पूर्व उसकी निर्माण प्रक्रिया का ज्ञान भी आवश्यक हो जाता है। सर्वप्रथम गर्भ अवस्था का ज्ञान किया जाता है। अतः इसके निर्माण करने वाले तत्व शुक्र-शोणित के स्वरूप का ज्ञान, उसके संयोग की प्रक्रिया, संयोग के उपरान्त उत्पन्न करने वाले भाव, आनुवंशिक सिद्धान्त, शुक्र-शोणित के बीज भाग, उनका परिवर्तन, लिंग भेद के कारण एवं आकृति देने वाले कारणों के साथ वृत्ति का भाव एवं अंग-प्रत्यंगों का उत्पत्तिक्रम तथा गर्भ की पोषण आदि प्रक्रिया एवं सिद्धान्तों का वर्णन जिस शारीर में किया गया है उसे **''गर्भावक्रान्ति शारीर''** कहा जाता है।

इस अध्याय में गर्भावक्रान्ति शारीर की व्याख्या जानने से पूर्व गर्भावक्रान्ति के भाव का ज्ञान करना भी आवश्यक हो जाता है। इसके लिए सुश्रुत के एक ही अध्याय में वर्णन किया गया है किन्तु चरक शारीर में खुड्डिका एवं महती नाम से दो अध्यायों में गर्भावक्रान्ति का वर्णन किया गया है। इस गर्भावक्रान्ति शब्द की व्याख्या में विभिन्न विद्वानों के विचार इस प्रकार हैं :-

(1) उपगमनमवतरणमिति (डल्हण), (2) गर्भस्यावक्रान्तिर्मेलक-उत्पत्तिरिति यावत् (चक्रपाणि), (3) यथा गर्भो गर्भतां सम्पद्यते (अरुणदत्त), प्राप्तिस्वरूपलाभः (इन्दु)।

डल्हण लिखते हैं कि गर्भाशय में स्थित आत्मा, प्रकृति एवं विकारों से युक्त शुक्र एवं शोणित गर्भ कहलाता है। **''तस्यावक्रान्ति, उपगमनम् अवतरणं इति यावत् गर्भावक्रान्ति''** अर्थात् अवक्रान्ति से गर्भ अवतरण का भाव लिया गया है जिसका अर्थ है, स्वरूप धारण करना।

JAYPEE BROTHERS

अरुणदत्त लिखते हैं कि **गर्भस्यावक्रान्ति अवक्रमण सम्प्राप्ति। यथा गर्भो गर्भतां संपद्यते इत्यर्थः**'' अर्थात् जिससे गर्भ में गर्भत्व की उत्पत्ति होती है या गर्भत्व का भाव उत्पन्न होता है। जिसके सम्पूर्ण कारणों का वर्णन इस अध्याय में किया गया है। इन्दु ने गर्भावक्रान्ति अध्याय के प्रारम्भ में लिखा है कि ''**पुत्रस्य निषेकात् प्रभृति योगक्षेमौ यथासम्भवतः, यथा च मातरि तिष्ठति, यथा च न व्यापद्यते, अव्यापनं च यथा सुखं सूते इति प्रशमनार्थमाध्यारम्भः**। इसका वास्तविक अर्थ शुक्र-शोणित संयोग से गर्भ के रूप में लिया गया है। इसके बाद गर्भावक्रान्ति की व्याख्या करते हुए इन्दु लिखते हैं कि:- **अत्र गर्भशब्देन मनः संयोगाच्चेतनेनात्म- नाधिष्ठितानां विकारविशेष उच्यते। तस्यावक्रमणं प्राप्तिः स्वरूपलाभः**। इससे भी गर्भ के स्वरूप निर्धारण का भाव अर्थात् व्यक्त होना या स्वरूप प्राप्त करना प्रकट होता है।

उपरोक्त विद्वानों की व्याख्याओं से यह सिद्ध होता है कि जिसमें गर्भ के अवतरण शरीर की व्याख्या की गई हो, जिसमें गर्भ के गर्भता सम्पादन का कार्य विवरण हो अथवा जिसमें गर्भ के अवक्रमण की स्थिति हो उसे गर्भावक्रान्ति शारीर कहा गया है।

डा० घाणेकर जी लिखते है कि गर्भ का वास्तविक अर्थ शुक्र-शोणित संयोग या निषेचित डिम्ब अर्थात् Fertilized ovum या Embryo है एवं गर्भावक्रान्ति का अर्थ शुक्र-शोणित संयोग पद्धति (Process of the fertilization of ovum) है। फिर भी इन्दु का भाव स्पष्ट है कि इस अध्याय में गर्भ के नौ मास की मासानुमासिक वृद्धि का वर्णन किया गया है। अतः गर्भावक्रान्ति का अर्थ गर्भपरिवृद्धि (Development of the foetus) भी समझना चाहिए।

गर्भावक्रान्ति शारीर में गर्भ के अवतरण एवं गर्भपरिवृद्धि दोनों का ही विवरण स्पष्ट रूप से होने के कारण इससे शुक्र-शोणित संयोग पद्धति एवं गर्भ परिवृद्धि भाव लिये जाने चाहियें। ''**अभिनवशारीरम्**'' में भी गर्भावक्रान्ति का अर्थ Process of the fertilization and Development of the foetus किया है। इसे आधुनिक परिभाषा में Embryology भी कहा जाता है।

अध्ययन की दृष्टि से गर्भावक्रान्ति शारीरम् (गर्भशारीरम्) को निम्न तीन भागों में विभक्त कर अध्ययन किया जाए तो क्रमिक विकास एवं निर्माण का ज्ञान सुगमता से हो जाता है :- (1) गर्भ अवतरण, (2) गर्भ निर्माण, (3) गर्भ का पोषण।

1. सर्वप्रथम गर्भ के अवतरण या स्थिति ज्ञान हेतु गर्भ परिभाषा, शुक्रार्तव के शुद्धाशुद्ध का ज्ञान, गर्भाधान, गर्भोत्पादक भाव, आनुवंशिक सिद्धान्त, कोष विभाजन, बीज के बीज भाग व बीजभागावयव का अध्ययन किया जाता है।
2. गर्भ निर्माण के आधारभूत तत्त्वों के ज्ञान के उपरान्त गर्भ-निर्माण प्रक्रिया का ज्ञान किया जाता है। इसमें स्तर निर्माण, शरीर निर्माण, अंग-प्रत्यंग निर्माण, लिंगभेद, आकृति एंव वर्ण देने वाले कारणभूत व्यापार, गर्भ के विकास आदि की प्रक्रियाएं आती हैं।

JAYPEE BROTHERS

3. गर्भ निर्माण करने वाले तत्त्व एंव प्रक्रियाओं के वर्णन के पश्चात् गर्भ पोषण व्यापार ज्ञान की आवश्यकता होती है। इसमें गर्भ की मातृपरतन्त्रता, अपरानिर्माण, नाभिनाड़ी निर्माण, गर्भ रक्त संवहन, गर्भवृद्धिकर भाव, देह प्रकृति एवं सत्त्व प्रकृतियां आती हैं।

गर्भ की परिभाषा

वंश परम्परा हेतु ऋतुकाल में स्त्री एवं पुरुष के समागम होने पर गर्भाशय में शुक्र-शोणित के मिलने के पश्चात् जीवात्मा अपने शुभाशुभ कर्मों सहित उसमें प्रवेश करती है। इसी संयुक्त स्वरूप को गर्भ कहा जाता है।

गर्भ लक्षण

शुक्रशोणितं गर्भाशयस्थमात्मप्रकृतिविकारसम्मूर्च्छितं गर्भ इत्युच्यते।
(सु०शा० 5/3)

अत्र गर्भशब्देन मनःसंयोगाच्चेतनेनात्मनाधिष्ठितानां महाभूतानां विकारविशेष उच्यते। (इन्दु)

शुक्रशोणितजीवसंयोगे तु खलु कुक्षिगते गर्भसंज्ञा भवति।
(च०शा० 4/5)

गर्भस्तु खल्वन्तरिक्षवाय्वग्नितोयभूमिविकारश्चेतनाधिष्ठानभूतः।
(च०शा० 4/6)

अर्थात् गर्भाशय में स्थित आत्मा प्रकृति एवं विकारों से युक्त शुक्र एवं शोणित को 'गर्भ' कहा जाता है।

यहां गर्भ शब्द का विशेष रूप से मन व आत्मा के संयोग एवं अधिष्ठित महाभूतों का विकार समुदाय विशेष अर्थ लिया जाता है।

गर्भाशय में शुक्र आर्तव और जीव का जब-जब जिस काल में संयोग होता है तब उसे 'गर्भ' नाम दिया जाता है।

यह गर्भ आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी इन पांच महाभूतों का विकार है तथा चेतना का आश्रयभूत है।

धातु एवं अवयवों की सूक्ष्म रचना परिचय

आधुनिक दृष्टि से अंग-प्रत्यंगों की रचना का जो वर्णन ऊपर बताया गया है उसमें तीन स्तर एवं कोषों का विशेष महत्व दर्शित होता है। यद्यपि ये कोष एक ही प्रारम्भिक गर्भ बीज से बनते हैं फिर भी गर्भवृद्धि क्रम में ये कोष भिन्न-भिन्न कर्मवाले कोषों का रूप धारण करते जाते हैं। यह भी पाया गया है कि एक ही स्वरूपवाले एवं

JAYPEE BROTHERS

एक ही कार्य करने वाले कोष एक-एक पुञ्ज के रूप में एकत्र होकर रहते हैं। ये अपनी संकोच विकास प्रक्रिया द्वारा अस्थि आदि को उनके साथ विभिन्न अवयवों एवं आकुंचित प्रसारित करके उनके द्वारा भिन्न-भिन्न चेष्टाएं कराने वाले मांस सूत्र (Muscle Fibres) साथ-साथ रहते हैं। अन्य कोषों की अपेक्षा सोम्यता विशेषरूप से होने के कारण कोषाओं का आदान करने की चेष्टाओं के आदेश भेजनेवाले नाड़ीकोष (Nerve Cell) भी एक साथ रहते हैं।

इस प्रकार स्वरूप एवं क्रिया की दृष्टि से समान कोषों के समूह को धातु (Tissue) कहते हैं। आधुनिक दृष्टि से धातुओं के चार भेद तथा प्रत्यैक के अनेक उपभेद भी किए हैं। विभिन्न धातुओं के मिलने से विभिन्न अवयव बनते हैं। जैसे मांस सूत्रों के योग से मांसपेशी बनती है परन्तु इन सूत्रों को जोड़ने वाले योजक सूत्र भी इनके साथ होते हैं। इसी प्रकार संज्ञा एवं चेष्टावाहक नाड़ी सूत्र भी इनमें व्याप्त होते हैं।

मूलरूप से चार धातुओं का नामकरण इस प्रकार किया गया है:-

1. आस्तरण धातु (Epithelium or Epithelia)
2. योजक धातु (Connective tissue)
3. मांस धातु (Muscular tissue)
4. नाड़ी धातु (Nervous tissue)

मानव आदि प्राणियों के शरीर का स्वरूप अब आसानी से समझा जाता है। यद्यपि शरीर कार्बन एवं ओषजन आदि मूल द्रव्यों के योग से बना है और ये भी विभिन्न विद्युत्कणों के मिलने से बने हैं किन्तु अध्ययन एवं वर्णन की सुगमता की दृष्टि से शारीरशास्त्रियों ने शरीर की चरम इकाई (Unit) कोषों को ही माना है। रचना एवं क्रिया की दृष्टि से कोष अपने-अपने अवयव की इकाई है। इनके मिलने से विभिन्न धातु बनते हैं। धातुओं के योग से विभिन्न अवयव तथा उनके योग से विभिन्न संस्थान और विभिन्न संस्थानों से शरीर बनता है।

आस्तरण धातु:- शरीर के समस्त पृष्ठ चाहे वे त्वचा के रूप में बाहरी हो अथवा आमाशय, मूत्राशय, महास्रोतस आदि आशयों (Cavity) अथवा रक्तवाहिनी, प्राणवह स्रोत (फुफ्फुसों के वायु कोष) के अन्दर अस्तर के रूप में हों या आस्तरण धातु से बने हों। ये आवरण का कार्य करते है। ये कोष परस्पर संश्लिष्ट होने से कोई स्थूल कण इन्हें भेदकर नहीं जा सकते। अत: यह धातु उनकी रक्षा का कार्य करती है। इन धातुओं के अन्य कर्मों में स्रावों का उत्पादन तथा अन्तर्गत रहने वाले द्रव का वहन करना हैं।

ये अनेक प्रकार के होते हैं

1. साधारण आस्तरण:- इसके भी दो भेद होते हैं:-
   क. कुट्टिम आस्तरण (Pavement epithelium)
   ख. अन्तरास्तरण (Endothelium)

JAYPEE BROTHERS

2. स्तम्भ आस्तरण (Columnar) एवं
   घन आस्तरण (Cubical epithelium)
3. ग्रन्थिभूत आस्तरण (Glandular epithelium)
4. मिश्र आस्तरण

अन्तर्वर्ती (संक्रामी) आस्तरण (Transitional)

प्रचित (स्तरित) शुक्ति सम (Stratified squamous)

संक्रामी आस्तरण (Transitional) प्रचित शुक्ति सम (Stratified squamous)

रचना की दृष्टि से फुफ्फुसों के वायु कोषों के अन्दर का अस्तर कुट्टिम आस्तरण है, रसवाही, रक्तवाही और लसीका स्रावी आशयों के आन्तरिक अस्तर अन्तरास्तरण के बने होते हैं। इनमें कुट्टिम आस्तरण गर्भ के बाह्यस्तर से बनते हैं तथा अन्तरास्तरण मध्य स्तर के बनते हैं।

महास्रोतस में आमाशय से गुदापर्यन्त स्तम्भ आस्तरण होता है। इनकी लम्बाई अधिक एवं चौड़ाई कम होती है। घन आस्तरणों की लम्बाई, चौड़ाई एवं मोटाई समान होती है। यह अस्तर चुल्लिका ग्रन्थि के अवकाशों व वृषणग्रन्थि के स्रोतों में होते हैं।

पक्ष्म आस्तरण स्तम्भ आस्तरण का ही एक भेद है। बीजवाहिनियों तथा गर्भाशय के ऊर्ध्व भाग में तथा वृषणग्रन्थियों की उत्सर्जनवाहिनियों में होते हैं।

स्रावी ग्रन्थियों की रसस्रावी दीवारें ग्रन्थिभूत आस्तरण से बनी होती हैं।

मिश्र आस्तरण के दो भेद हैं संक्रामी आस्तरण जो गविनियों एवं मूत्राशय में होते हैं। प्रचित शुक्ति सम आस्तरण मुख से आमाशय के प्रथम छिद्र तक अन्नवह स्रोत, गुद आदि अन्य छिद्रों में होते हैं।

नाड़ी आस्तरणः- श्रवण, दर्शन आदि ज्ञानेन्द्रियों के अन्तः अवयव अपनी-अपनी नाड़ियों के विशिष्ट कर्म करने वाले कोषों के मेल से बनते हैं।

योजक एवं धारक धातुः- स्वरूप की दृष्टि से यह आस्तरण धातु से विपरीत है। इन धातुओं का कर्म मृदु तथा जीवनोपयोगी धातुओं को आपस में जोड़ना एवं आश्रय देना है।

योजक तथा धारक धातुओं के भेदः- पिच्छा, समधातु, तन्तुमयधातु, स्थिति स्थापक धातु, मेदधातु, जालमय तथा लसीकाधातु, तरुणास्थि अस्थि, दन्त, रक्त एवं रस।

इस प्रकार बताये गये धातुभेद से प्रत्येक धातु के स्तर अपनी-अपनी धातु की रचना एवं सुरक्षा करने में सहायक होते हैं। धातु द्वारा शरीर रचना को समझने के लिए कपास एवं तन्तुओं का उदाहरण विशेष रूप से समझ लेना चाहिए।

JAYPEE BROTHERS

जैसे कपास आदि के तन्तुओं से सूत्र, सूत्रों से विभिन्न प्रकार के वस्त्र, विभिन्न वस्त्रों से पोशाक बनती है उसी प्रकार कोषों से धातु, धातुओं से अंग-प्रत्यंग एंव अंग-प्रत्यंगों के योग से शरीर बनता है। ये कोष भी उन मूल द्रव्यों से बने हैं जिनसे सृष्टि के अन्य द्रव्य बनते हैं। प्रतिदिन इन सभी का निर्माण एवं क्षय आहार की चयापचय प्रक्रिया द्वारा निरन्तर होता रहता है।

गर्भ में तीन प्रकार के जो स्तर बनते हैं उनका विशेष विवरण आगे दिया गया है जिससे अंग, अवयव एवं संस्थान निर्मित होते हैं।

शुक्र एवं आर्तव विवरण

सृष्टि उत्पत्ति क्रम में जिस प्रकार प्रकृति एवं पुरुष सहयोगी होकर तत्त्व परम्परा को प्रारम्भ करते हैं तत्पश्चात् कार्यसृष्टि निर्माण परम्परा में प्रवृत्त होते हैं। उसी प्रकार गर्भ निर्माण में शुक्र व शोणित के संयोग की आवश्यकता होती है। इन संयुक्त होने वाले शुक्र तथा शोणित का स्वरूप व स्वभाव विशुद्ध होना आवश्यक है। इनमें विकार होने से भ्रूण की रचना या तो होती ही नहीं यदि हो भी जाए तो गर्भ विकृत होता है। अष्टांग हृदय में इसी भाव को व्यक्त करते हुए लिखा है कि :-

शुद्धे शुक्रार्तवे सत्त्वः स्वकर्मक्लेशचोदितः।
गर्भः सम्पद्यते युक्तिवशादग्निरिवारणैः॥ (अ०हृ०शा० 1/1)

शुक्र एवं आर्तव के शुद्ध अर्थात् गर्भोत्पादन योग्य होने पर अपने कर्मों के अनुसार क्लेश से प्रेरित हुआ मन सामर्थ्य के अधीन होकर गर्भरूप हो जाता है। जिस प्रकार अरणी से अग्नि युक्ति द्वारा उत्पन्न की जाती है, किन्तु अयुक्ति से ये प्रक्रियायें नहीं होती। अतः गर्भाधान कराने की योग्यता व स्वस्थ्य गर्भोत्पादक क्षमता जिस शुक्र तथा आर्तव में हो उसे शुद्ध कहा जाता है। गर्भ-शरीर की विभिन्न प्रक्रियाओं के ज्ञान से पूर्व शुक्र शोणित के अशुद्ध एवं शुद्ध स्वरूप का ज्ञान होना भी आवश्यक है।

शुक्र शोणित सामान्य परिचय

मनुष्य के शरीर से निकलने वाला गर्भोत्पादक स्राव (Semen) ही शुक्र कहलाता है, इसी को रेत, सार आदि नामों से भी पुकारा जाता है। पुरुषों में गर्भोत्पादक स्राव एक ही वस्तु होती है किन्तु स्त्रियों में दो वस्तुएं होती है। इनमें एक वस्तु दृश्य होती है तथा दूसरी अदृश्य होती है। प्रतिमास योनि द्वार से निकलने वाला आर्तव, शोणित या बहिःपुष्प कहा जाता है। इसे Menses या Menstruation कहा जाता है। दूसरा शरीर के अन्दर ही रहता है, इसे अन्तःपुष्प या डिम्ब कहते हैं। यह Ovum कहलाता है।

शुक्र स्वरूपः- शरीर की नित्य पाक-प्रक्रिया में भोजन के परिपाक होने पर शरीर के मूलभूत उपादान दोष धातु मलों की प्रवृत्तियां निरन्तर चलती रहती है। इस

JAYPEE BROTHERS

प्रक्रिया में इनके स्वयं पोषण के साथ इन्हीं के द्वारा अन्य अवयवों के पोषण आदि के लिए अथवा शरीर की इतर प्रक्रियाओं के लिए अनेक भाव उत्पन्न होते रहते हैं। द्रव रूप में उत्पन्न होने वाले रस, रक्त, लालास्राव एवं पाचक पोषक तरलों के समान शुक्र भी एक तरल है, जिसे प्राचीन चिकित्साविज्ञों ने अन्तिम धातु बताया है। यह समस्त धातुओं का सार एवं पुरुष के बल की वृद्धि करने वाला है। इसी शुक्र द्वारा शरीर के सारभाग विशिष्ट अंश 'ओज' की उत्पत्ति होती है। अशुद्ध रहने पर सन्तति बाधा के साथ शरीर पर भी कुप्रभाव पड़ता है।

संहिता ग्रन्थों में शुक्र धातु का स्वरूप बताते हुए लिखा है कि जिस प्रकार गन्ने में रस, दूध या दही में घी, तिल में तैल अस्पष्ट रूप से व्याप्त रहता है उसी प्रकार शुक्र भी पुरुषों में व्याप्त रहता है। मैथुन क्रिया में प्रहर्षोत्पत्ति के कारण सम्पूर्ण शरीर से खिंचकर मूत्रेन्द्रिय द्वारा बाहर निकलता है। बाल्यकाल में ही बालक व बालिका में शुक्र की उपस्थिति होती है लेकिन वह अव्यक्तावस्था में रहता है। कौमार्य अवस्था में प्रकट होता है।

पारिषद्य शब्दार्थशारीरम्:- पुरुष के शुक्र और स्त्री के रज दोनों के सम्मिश्रण से गर्भ की उत्पत्ति होती है जो शरीर के सभी भावों का उत्पादक कारण होता है। हर भाव की उत्पत्ति गर्भ में तभी होगी जब हर भाव की उत्पत्ति का बीज वहां होगा। यह तभी सम्भव है जब शुक्र या रज के निर्माण में सम्पूर्ण शरीर भाग ले। इसी कारण शुक्र को सर्वशरीरव्यापी माना है। शुक्र निर्माण के लिए आज भी अनेक हार्मोन्स की आपसी क्रिया में सन्तुलन आवश्यक माना जाता है। हार्मोन्स सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त होते हैं तथा अपने-अपने स्थान विशेष पर विशेष-विशेष कार्य करते हैं। अतः शुक्रोत्पत्ति का आधार एवं क्षेत्र सम्पूर्ण शरीर माना गया है। अभी भी फिजियोलोजिस्ट के लिए वृषणों में बनने वाले शुक्र कीटों एवं ओवरीज में बनने वाले ओवम का सम्पूर्ण शरीर से क्या सम्बन्ध है इसे जोड़ना शेष है। अतः प्राचीनों ने जो कहा है वह आज तक परिवृद्ध विज्ञान के किसी अंश से मेल नहीं खाता, यह मानकर उसे कपोल-कल्पित मान लेना अनुचित है। इस पर अनुसंधान आवश्यक है।

उदाहरण के लिए सुश्रुत दो बात सामने रखते हैं:-एक तो यह है कि शुक्र की उत्पत्ति सम्पूर्ण शरीर में तिल तैलवत् होती है तथा दूसरे शुक्र क्षय में **''मेढ्रवृषणवेदनाशक्ति मैथुने चिराद्वा प्रसेकः प्रसेके चाल्परक्तशुक्रदर्शनम्''** के द्वारा शुक्र का सम्बन्ध मेढ्र, वृषण और मैथुन कर्म से जोड़कर इनका शुक्र से घनिष्ठ सम्बन्ध स्वीकार करता है। उसकी वृद्धि से शुक्राश्मरी की उत्पत्ति और शुक्र के अति-स्खलन से दौर्बल्य स्वीकार करता है। शुक्राशय, शुक्रहरणी, हर्ष आदि विविध स्थानों और क्रियाओं को प्रकट करना आदि से यह सिद्ध होता है कि सुश्रुत के मत से शुक्र की उत्पत्ति में सामान्यतया सम्पूर्ण शरीर और विशेषतया वृषणादिक यन्त्र भाग लेते हैं। आज पाश्चात्य विज्ञान एक भाव को स्वीकार करता है और दूसरे भाव पर मौन

JAYPEE BROTHERS

है। ऐसी दशा में हम उसके एक पक्षीय न्याय को मानकर अपने अन्य सिद्धान्तों को कैसे समाप्त कर सकते हैं जिनके निर्माण में आचार्यों की सहस्रावधि वर्षीय परम्परा ने बिना किसी स्वार्थ के पूर्ण वैज्ञानिक दृष्टि से कार्य किया है।

अस्तु, शुक्रधरा कला का अर्थ ''वह कला है जो शुक्र को धारण करती है तथा जिसके द्वारा बीजार्थ शुक्र का जन्म होता है'' लिया जा सकता है। स्थूल रूप में शुक्र का निर्माण और धारण करने वाली नलियों के आस्तरण लिये जा सकते हैं। यदि हिस्टोलोजी की दृष्टि से विचार किया जावे तो जिसे आधुनिक सेमीनीफेरस इपीथिलियम (Seminiferous Epithelium) कहते हैं जो सेमीनीफेरस ट्यूब्यूल्स में (वृषणों के अन्दर) बिछी रहती है। इस इपीथिलियम में दो प्रकार के कोश होते हैं। एक पोषण कोश और दूसरे लिंग कोश। ये लिंग कोश ही प्रगुणन करके शुक्र कीटों का निर्माण करते हैं। अस्तु, शुक्रजनन या निर्माण की दृष्टि से शुक्र-कला सेमीनीफेरस इपीथिलियम होगा। शुक्रक्षय में वृषण वेदना की ओर जो सुश्रुत ने इंगित किया है वह वेदना इपीथिलियम में शोथ के कारण होती है।

वृषणों में इन्डोक्राइन (अन्तःस्रावी) क्रिया करने की भी शक्ति होती हैं अलेक्जेण्डर मैक्सीमोव और ब्लूम अपने ग्रन्थ ''टैक्स्ट बुक आफ हिस्टोलोजी'' में लिखते हैं कि वृषण शुक्र-कीटोत्पत्ति के अतिरिक्त लिंग चिह्नों की उत्पत्ति और विकास में भी भाग लेते हैं। वे लिखते :- "In the developing organism it helps to regulate the growth of the skeleton and of other parts" कि वृषण वृद्धिगत जीवों में अस्थियों के कंकाल के विकास का नियन्त्रण करता है तथा अन्य शारीरावयवों के विकास का भी नियन्त्रण करता है। आयुर्वेदीय सप्त धातु कल्पना से जो अस्थि-मज्जा-शुक्र इनका एक दूसरे से जो जनितृ-जन्य (एक से दूसरे की उत्पत्ति) सम्बन्ध बताया गया है उसमें और उपरोक्त विद्वानों की कल्पना में क्या फर्क है? वृषण से उत्पन्न शुक्र जिसे सेन एवं वैद्य रणजीतराय देसाई अन्तःशुक्र कहते हैं, सम्पूर्ण शरीर में जाता है और जाकर अन्य अंगों के साथ सम्पूर्ण अस्थि-संस्थान को पोषण देता है। इस अन्तःशुक्र को धारण करने वाली कला फिर शुक्रधरा कला न कहलावेगी तो क्या कहा जावेगा? और इस शुक्रधरा कला को सुश्रुत द्वारा सर्वशरीरव्यापिनी मानना सत्य प्रतीत होता है।

इसके अतिरिक्त शुक्र में इपीडिडाइमिस, वास डेफरेन्स, वैसाईकिल सैमीनैलिस के इपीथिलियम में भी स्राव आकर मिलते हैं जिसके कारण शुक्र का वाग्भट्ट के अनुसार इस प्रकार स्वरूप बनता है :-

तत् सौम्यं स्निग्धं गुरु शुक्लं मधुगन्धि, मधुरं पिच्छिलं बहु बहलं घृत-तैलक्षौद्रान्यतमवर्णं व शुक्रं गर्भाधानयोग्यं भवति। (अ०सं०शा० 1/9) अतः इन अवयवों का आस्तरण बनाने वाला इपीथिलियम भी शुक्रधरा कला कहलावेगा।

JAYPEE BROTHERS

इन्हीं सब विषयों को दृष्टि में रखकर शुक्रधरा कला से प्रजनन संस्थान को स्रावोत्पादक या धारण कला (Secreting membrane of the genital system) ऐसा शारीर परिषद् ने सर्वसम्मति से स्वीकार किया (पा०श० शारीर)

ऊपर जो सबसे पहला सुश्रुत का उदाहरण दिया है उसमें **''वस्तिद्वारस्य अधः द्व्यंगुले दक्षिणे पार्श्वे (वामपार्श्वे च) मूत्रस्रोतःपथात् पुरुषस्य शुक्रं प्रवर्तते''** जो वर्णन दिया है वह सेमीनल वैसाइकिल्स, वास डैफरेन्स एवं इजेक्यूलेटरी डक्ट के लिए संक्षिप्त इंगित है।

शुद्ध शुक्र लक्षण

स्फटिकाभं द्रवं स्निग्धं मधुरं मधुगन्धि च।
शुक्रमिच्छन्ति केचित्तु तैलक्षौद्रनिभं तथा॥ (सु०शा० 2/11)

शुद्ध शुक्र का स्वरूप वर्णन करते हुए सुश्रुत लिखते हैं कि जो शुक्र स्फटिक के समान, श्वेत, स्निग्ध, मधुर एवं मधु के समान गन्धवाला हो उसे तरल रूप शुद्ध शुक्र माना जाता है।

अन्य आचार्य तैल एवं मधु के समान तरल को भी शुद्ध शुक्र कहते हैं। अष्टांग-संग्रह में लिखा है:-**''तत् सौम्यं स्निग्धं, गुरु शुक्लं मधुगन्धि, मधुरं पिच्छिलं बहलं घृततैलक्षौद्रान्यतमवर्णं च शुक्रं गर्भाधानयोग्यं भवति।''** (अ०सं०शा० 1/9)

सौम्य (शीत गुणप्रधान) स्निग्ध, गुरु, श्वेत, मधुगन्धि, पिच्छिल (Sliminess चिपचिपा), बहल, घन घृत, तैल एवं मधु के समान वर्णवाला शुक्र गर्भाधान के योग्य होता है। यहां विभिन्न वर्ण बताते हुए भी स्फटिक तथा घृत वर्ण शुक्र से उत्पन्न संतान गौर वर्ण की, तैल वर्णवाले शुक्र से कृष्ण वर्ण की, मधुवर्ण शुक्र से उत्पन्न सन्तान श्याम वर्ण की होती है। **''तत्र शुक्रे शुक्ले घृतमण्डमिव गर्भस्य गौरत्वं, तैलाभे कृष्णत्वं मध्वाभे श्यामवर्णत्वम्।'' (अ०सं०)**
इसी विषय पर चरक लिखते है कि :-

बहलं मधुरं स्निग्धमविस्रं गुरु पिच्छिलम्।
शुक्लं बहु च यच्छुक्रं फलवत्तदसंशयम्॥ (चरक चि० 2/4/50)

सन्तानोत्पादक शुक्र बहल, रस में मधुर, गुण में स्निग्ध, दुर्गन्धरहित, गुरु पिच्छिल, वर्ण में शुक्ल और स्राव के समय जो अधिक मात्रा में निकले वह फलयुक्त होता है अर्थात् फल देने वाला है इसी प्रकार दूसरे स्थान पर लिखा है कि :-

स्निग्धं पिच्छलं च मधुरं चाविदाहि च।
रेतः शुद्धं विजानीयाच्छ्वेतं स्फटिकसन्निभम्॥ च०चि० 30/145

JAYPEE BROTHERS

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में शुक्र का वर्णन करते हुए लिखा है कि :-

The semen is liquid in form, viscid, neutral or reaction is alkaline. The odour of it though compared with other things still it has own peculiar smell.

ज्ञातव्यः-उपरोक्त विवरण में शुद्ध शुक्र के बताए गए लक्षणों एवं गुणों का महत्व प्रदर्शित करते हुए अनेक विद्वान् लिखते हैं कि शुक्र में श्वेतत्व, द्रवत्व, स्निग्धत्व, सौम्यत्व एवं पिच्छिलता आदि का बताया जाना इसकी विशेषता को महत्व देता है। श्वेत एवं द्रव गुण के साथ स्निग्धता का होना इसलिए आवश्यक है कि मैथुन क्रिया में योनि से निकलने वाला शुक्र वहीं पर कुछ क्षण रहता है एवं मैथुन के घर्षण से उत्पन्न हुई योनि की श्लेष्मकला की शान्ति करके उसी में Absorb होकर स्त्री के शरीर की पुष्टि में सहायता प्रदान करता है। अतः स्निग्ध गुण अपने स्वभाव के अनुरूप पुष्टिकारक होने से शरीर पुष्टिकर तो है ही, साथ ही स्निग्धता के कारण योनि में शुक्र रहने से शुक्र के सम्पूर्ण शुक्राणु गर्भाशय प्रवेश की क्रिया में भाग ले सकते हैं। यदि वह स्निग्ध नहीं होगा तो जल के समान तरल होने पर अधिकांश शुक्राणु योनि से बाहर निकल जायेंगे, जिससे गर्भधारण क्रिया में पूर्ण सहायता नहीं मिलती। अतः उत्तम गर्भाधान नहीं हो पाता, सामान्यतया मधुर रस का ज्ञान घ्राण, मुख, कण्ठ, ओष्ठ, जिह्वा प्रसादन से होता है। किन्तु शुक्र की मधुरता का ज्ञान अनुमान से किया जाता है। चरक व सुश्रुत दोनों ने ही **''षट्पदपिपीलिकानामिष्टम्''** जो लक्षण बताया है उसी से अनुमान किया जाता है। शुक्र के भूमि पर गिरने या किसी कपड़े पर लगने से चीटियां उसकी तरफ आकर्षित होती हैं। रासायनिक प्रतिक्रिया की दृष्टि से मधुर रस का अर्थ लेने में 'न अम्ल न क्षारीय' (Neutral) अर्थ लिया जाता है। क्योंकि इसमें क्षारीय एवं अम्लीय धर्म नहीं मिलता। क्षार एवं अम्ल पदार्थ एकत्र मिलने से मधुरत्व प्राप्त होता है। दही में नमक का प्रयोग दैनिक प्रक्रिया में देखा जाता है। नमक क्षारीय होने से दही की अम्लता को क्षीण करता है। इसी प्रकार क्षारत्व का शमन अम्ल से होता है। सुश्रुत लिखते हैं:- **अम्लेन सह संयुक्तः सती-क्ष्णलवणो रसः माधुर्यं भजते इत्यर्थः, तीक्ष्णभावं विमुञ्चति। (सू०शा० 1/26)** शारीरिक समस्त धातुओं की प्रतिक्रिया किंचित् क्षारीय पदार्थों की गणनानुसार मधुर रस में की जाती है। इसी कारण शुक्र को मधुर बताया गया है।

यद्यपि शुक्र की गन्ध का किसी विशेष वस्तु से अनुमान नहीं लगाया जा सकता है क्योंकि इसकी अपनी स्वतन्त्र गन्ध होती है फिर भी अधिकतर मधु से उसकी गन्ध मिलने के कारण ही मधु-गन्धि कहा जाता है। स्फटिक विशेष श्वेत होने से श्वेतरूपता का लक्षण इसी से किया गया है। सुश्रुत के अतिरिक्त अन्य विद्वानों ने शुक्र में सौम्य आदि अन्य गुणों का भी वर्णन किया है। इसे कफ गुणों की अधि-कतावाला भी समझा जाता है। दूसरा अर्थ यह भी होता है कि जिसके उत्सर्ग होने (निकलने) पर विदाह या जलन नहीं होती है। यदि जलन हो भी तो पित्त दोष के

JAYPEE BROTHERS

कारण होती है। शुक्र में पिच्छिलता अर्थात् चिपचिपे स्वभाव के कारण शुक्राणु योनि से गर्भाशय तक बीजवाहिनी (Fallopian tube) में गति करते हुए किसी प्रकार की बाधा अनुभव नहीं करते।

शुक्र दोषः- शुक्र दोष में वर्णित शुद्ध लक्षणों के अतिरिक्त जो भी विपरीत लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं, वे सभी शुक्र के दोष कहे जाते हैं। सुश्रुत में शुक्र दोषों का वर्णन करते हुए लिखा है कि :-

वात, पित्त, कफ एवं शोणित (रक्त) आदि के वर्ण तथा लक्षणों से युक्त, शव के समान गन्धवाला, गांठदार दुर्गन्धित, पूययुक्त, क्षीण (शक्तिहीन), मूत्र एवं पुरीष की गन्धयुक्त शुक्र द्वारा पुरुष सन्तानोत्पत्ति में समर्थ नहीं होते। चरक में शुक्रदोषों का वर्णन करते हुए लिखा है कि :-

फेनिलं तनु रूक्षं च विवर्णं पूति पिच्छिलम्।
अन्यधातूपसंसृष्टमवसादि तथाष्टमम्॥ (च०चि० 30/139)

चरक ने दूषित शुक्र के आठ लक्षण बताये हैं :- 1. फेनयुक्त, 2. पतला, 3. रूक्ष, 4. विवर्ण, 5. दुर्गन्ध युक्त, 6. पिच्छिल, 7. अन्य धातु मिश्रित 8. स्खलन के समय दुर्बलता अनुभव कराने वाला।

ज्ञातव्यः- मनुष्य के प्रजोत्पादन में समर्थता एवं अस्वस्थता उसके वीर्य की स्वच्छता एवं विकृति पर निर्भर करती है। ऐसा भी देखा जाता है कि पुरुष मैथुन में समर्थ हो किन्तु वीर्य में शुक्राणुओं के अभाव के कारण प्रजोत्पादन में असमर्थ हो तथा इसके विपरीत यह भी हो सकता है कि पुरुष के वीर्य में प्रजोत्पादक शुक्राणु उपस्थित हों किन्तु वह मैथुन करने में असमर्थ हो। यहां सुश्रुत एवं चरक के द्वारा वर्णन किये गये प्रजोत्पादन से वीर्य की विकृति का अनुमान किया जाता है। शुक्र को विकृत करने वाले अनेक कारण हो सकते हैं। इन कारणों में शुक्र में शुक्राणु विद्यमान ही नहीं हों और यदि हों भी तो प्रजोत्पादन में असमर्थ होते हैं। देखा जाए तो शुक्राणुओं का निर्माण अण्डग्रन्थि में होता है जहां से शुक्र प्रणाली द्वारा शुक्राशय में आते हैं। वहां से अग्रसर होते हुए इनके साथ पौरुष ग्रन्थि का भी स्राव इनमें मिल जाता है। ये सभी स्राव रक्त से उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार वीर्य की विकृति में रक्त, शुक्राशय, शुक्रप्रणाली, अण्डग्रन्थि तथा मूत्रमार्गादि की विकृतियां भी कारण बन सकती हैं। आयुर्वेद के अनुसार ये विकृतियां वातादि दोषों के अनुसार आठ प्रकार की होती है। वातिक रोगियों में इससे सम्बन्धित अवयवों में शोथ, शुक्राणुओं के निर्माण में बाधा आदि कारण पाये जाते हैं। पैत्तिक रोगियों से सम्बन्धित अवयवों में दाह आदि कारणों से शुक्राणु नष्ट हो जाते हैं। श्लेष्मिक रोगियों से सम्बन्धित श्लेष्मिक संश्लेष के कारण शुक्राणुओं के मार्ग में अवरोध आदि कारणों से शुक्राणुओं की अनुपस्थिति पाई जाती है। इसी प्रकार वात, पित्त, कफ आदि के विभिन्न संयोग से अन्य प्रकार की अनेक विकृतियां उत्पन्न हो जाती है।

JAYPEE BROTHERS

अत: यह सिद्ध होता है कि सुश्रुत में जो **''प्रजोत्पादने असमर्था भवन्ति''** लिखा है उससे यह ज्ञात होता है कि शुद्ध शुक्र अनेक दोषों के कारण विकृत हो जाता है। सुश्रुत के अनुसार ये विकृतियां ग्यारह बताई गई हैं। तीन दोष एवं रक्त संचार एवं कुछ ग्रन्थों के अनुसार चार अन्य विकृतियां तथा तीन विकृतियां दार्शनिक बताई हैं, इन विकृतियों से युक्त पुरुष प्रजोत्पादन में असमर्थ होता है क्योंकि कुणपगन्धि में वीर्य कीट नष्ट रहते हैं। इसलिए स्त्री डिम्ब से मिलने में समर्थ नहीं होते, गन्धयुक्त होने पर शुक्र डिम्ब के साथ मिल नहीं सकते तथा इसी कारण शुक्र का उत्सर्ग भी ठीक नहीं हो पाता। वैसे भी कोई भी दुर्गन्धित पदार्थ तो स्वयं ही विकृत होता है। पूयगन्धयुक्त शुक्र पूयप्रमेह (Gonorrhoea) आदि व्याधियों के कारण विकृत रहता है। इसलिए क्षीणवीर्य के शुक्राणु भी क्षीण रहते हैं।

आधुनिक दृष्टि से वीर्यान्तर्गत बीज या शुक्राणु (Spermatozoa) के ऊपर निर्भर रहता है तथा असामर्थ्य इसके दोषों पर निर्भर करती है। अष्टांग संग्रह में लिखा है कि :- **''वातपित्तश्लेश्मकुणपगन्धिपूयक्षीणमूत्रपुरीषरेतांसित्वबीजानि भवन्ति।''** यह सुश्रुत के वर्णन के समान लिखते हुए वाग्भट्ट **''रेतांसित्वबीजानि''** का उल्लेख करते हैं अत: इस वचन से श्री घाणेकर जी की दृष्टि से शुक्र को फल मानना चाहिए एवं फल में अंकुर उत्पन्न करने की असामर्थ्य बीजाभाव से ही होती है। उसी प्रकार शुक्र में भी अनुपस्थिति होती है तब उस अवस्था को अशुक्राणुता (Azoospermia) कहते हैं। यह अशुक्राणुता दो प्रकार की हो सकती है। प्रथम वृषणग्रन्थि में शुक्राणुओं की उत्पत्ति ही नहीं होना तथा दूसरे प्रकार में शुक्राणु उत्पन्न होते हैं किन्तु अन्य किन्हीं कारणों से नष्ट हो जाते हैं। सुश्रुत आदि में बताये गये शुक्रदोष के कारण दूसरे प्रकार की अशुक्राणुता उत्पन्न होती है। इसमें प्रथम प्रकार की अशुक्राणुता तो नपुंसकों में पाई जाती है जिसका पृथक् वर्णन किया गया है अत: दूसरे प्रकार में शुक्राणुहीनता के अनेक कारण हो सकते हैं :- (1) शुक्राणुओं का संख्या में कम या क्षीण होने को अल्पशुक्राणुता (Oligozoospermia) कहते हैं। (2) वीर्यगत जीवाणुओं का मृत के समान होना, इस अवस्था को नष्ट शुक्राणुता (Necrozoospermia) कहते हैं। (3) शुक्र में रक्त मिला होने वाली अवस्था को रक्तशुक्रता (Haemospermia) कहते हैं। (4) शुक्र के अल्पराशि में होने वाली अवस्था को एवं कठिनता से निकलने वाली अवस्था को अल्पशुक्रता (Oligospermia) कहते हैं। जब शुक्र का उत्सर्ग होता ही नहीं है, तब उसे क्षय (Aspermia) कहते हैं। यद्यपि पुरुषों में शुक्रगत बीज अदृश्य होता है। अत: जिस शुक्र में यह बीज रहता है उसी की वेदना, वर्ण एवं स्थिति से उस बीज की स्थिति का अनुमान किया जाता है। आधुनिककाल में शुक्राणुओं की स्थिति का पता लगा लिया जाता है। उनकी संख्या एवं अवस्था का पूर्ण विवरण मिल जाता है। इसी स्थिति के अनुसार पुरुष के सन्तानोत्पादक गुण की स्थिति का पता लगाया जाता है।

JAYPEE BROTHERS

for detailed information on ayurveda books, visit our website www.jaypeebrothers.com, for detailed information on ayurveda books, visit o

रचना शारीर

(आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान)

पुस्तक की विशेषता

- नवीन पाठ्यक्रम के अनुसार दन्त, नख एवं केश का भी वर्णन कर दिया है।
- सी.सी.आई.एम. (भारत सरकार) के बी.ए.एम.एस. एवं एम.डी. (शारीर) हेतु निर्दिष्ट पाठ्यक्रम के आधार पर विषय वर्णन।
- संहिता एवं संग्रह ग्रन्थों में वर्णित रचना शारीर विषय के सन्दर्भों का आधुनिक विज्ञान से युक्तियुक्त तुलनात्मक अध्ययन का वैज्ञानिक वर्णन।
- शरीर के विभिन्न संस्थानों के प्रमुख अवयवों का आधुनिक विज्ञान (Modern Anatomy) के अनुसार परिचय।
- रेडियोलोजिकल शारीर का परिचय।
- मुख्य शरीर अवयवों का मौखिक परीक्षा हेतु संक्षिप्त परिचय तालिका रूप में।
- प्रमुख अवयव परिभाषा तालिका के रूप में।
- मौखिक परीक्षा हेतु प्रमुख स्मरण करने योग्य बिन्दु।

आचार्य वैद्य ताराचन्द शर्मा एम.डी आयुर्वेद, स्व. पं. रामदत्त जी शर्मा के सुपुत्र, मूल निवासी बिसाऊ, झुन्झुनू (राजस्थान) ने अपना आयुर्वेद अध्ययन वैद्य मुरारी मिश्र जी एवं वैद्य रामकृष्ण शर्मा जी दण्ड के सानिध्य में कर्माभ्यास करते हुए आयुर्वेदाचार्य उपाधि प्राप्त की, 1968 से 1978 तक जयपुर एवं हरियाणा के विभिन्न महाविद्यालयों में अध्यापन कराते हुए पदार्थ विज्ञान, शरीर रचना विज्ञान, आयुर्वेद का इतिहास एवं द्रव्यगुण विज्ञान आदि विषयों पर पुस्तकों का लेखन किया। 1980 में पंजाब विश्वविद्यालय पटियाला से एम.डी. आयुर्वेद की उपाधि प्राप्त कर दिल्ली के मूलचन्द हॉस्पिटल में वरिष्ठ अनुसंधान अधिकारी के पद पर पं. हरिदत्त जी शास्त्री एवं श्री मुकुन्दीलाल जी द्विवेदी के सानिध्य में आयुर्वेद विश्वकोश तैयार किया जिसका एक भाग "पन्चकर्म चिकित्सा विज्ञान" चौखम्बा से प्रकाशित हो चुका है। 1995 में वैद्य शिवकुमार जी मिश्र, पूर्व सलाहकार आयुर्वेद, भारत सरकार के निर्देशन में संकलन कार्य पूर्ण कर मूलचन्द से निवृत्ति लेकर 1995 से मॉडल आई. हॉस्पिटल, लाजपतनगर में अधीक्षक आयुर्वेद विभाग के पद पर कार्य कर रहे हैं। साथ ही स्वतंत्र चिकित्सा भी कर रहे हैं।

आपके लेख लगभग 200 पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं तथा अनेक सेमीनारों में शोधपत्र वाचन भी किये हैं। आप दिल्ली के जाने-माने सिद्धहस्त नाड़ी चिकित्सक हैं। आपकी 35 पुस्तकें अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं। आपने केन्द्रीय आयुर्विज्ञान अनुसन्धान संस्थान की पाँच पुस्तकों : वैद्य मनोरमा, अभिनव चिन्तामणि, बृहत योग तरंगिणी, रसमुन्जूषा, वैद्यक संग्रह का हिन्दी अनुवाद किया है। विगत 40 वर्षों से आप आयुर्वेद छात्रों में लेखक के रूप में प्रसिद्ध व्यक्तित्व के धनी हैं। आपको अनेक संस्थानों ने अनेक मानद उपाधियाँ : शताब्दी महर्षि, राजस्थान श्री, आयुर्वेद विश्व गौरव, आयुर्वेद महाप्रयाण प्रदान की है। वर्तमान में आप राष्ट्रीय आयुर्वेद विद्यापीठ, दिल्ली के राष्ट्रीय गुरु एवं महासम्मेलन के मंत्री है। आप दिल्ली के जान-माने नाड़ी चिकित्सक हैं। राष्ट्रीय आयुर्वेद विद्यापीठ द्वारा आपको लाईफ टाईम अचीवमेंट अवार्ड दिया गया है। अखिल भारतीय आयुर्वेद संस्थान, सरिता विहार, दिल्ली द्वारा टीचर्स-डे पर सम्मान-पत्र दिया गया है एवं दिल्ली सरकार द्वारा "**वरिष्ठ नागरिक सम्मान**" से सम्मानित किया गया है।

Printed in India

Available at all medical bookstores
or buy online at www.jaypeebrothers.com



JAYPEE BROTHERS
Medical Publishers (P) Ltd.
EMCA House, 23/23-B, Ansari Road,
Daryaganj, New Delhi - 110 002, INDIA
www.jaypeebrothers.com

Join us on facebook.com/JaypeeMedicalPublishers

Shelving Recommendation
AYURVEDA

ISBN 978-93-5696-168-5

